इकाई 10 कुमारसम्भवम् (पञ्चम सर्ग) श्लोक11–20

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 शिव प्राप्ति हेतु पार्वती तपस्या का वर्णन

10.3 सारांश

10.4 शब्दावली

10.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.6 बोध/अभयास प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

- इकाई 10 में आप 'पार्वती तपः फलोदय' नामक पंचम सर्ग के श्लोक 11–20 का अध्ययन करेंगे।
- इनके अध्ययन से आपको यह विदित होगा कि किसी कार्य की सिद्धि हेतु तपस्या रूपी व्रत का पालन आवश्यक है, तभी लक्ष्य तक पहुँचना सम्भव होता है।
- श्लोकों के अध्ययन से यह स्पष्ट होगा कि पार्वती ने एक– एक करके सभी भोग विलासिता की वस्तुओं का त्याग कर दिया एवं दिन प्रतिदिन तपस्या को और भी कठोर कर दिया।
- मखमल के बिस्तर के स्थान पर मूँज का आसन।
- रेशमी वस्त्रो के स्थान पर वल्कल वस्त्र।
- स्वर्ण करधनी के स्थान पर मूँज से बनी करधनी को अपना आभूषण बनाया।
- इकाई के अध्ययन से छात्रों को यह उपदेश मिलेगा कि 'कार्य की सिद्धि तक' विश्राम नहीं लेना चाहिए तभी लक्ष्य प्राप्ति सम्भव है।

10.1 प्रस्तावना

कालिदास ने कुमारसंभवम् के पंचम सर्ग में वंशस्य छन्द का प्रयोग किया है। इस सर्ग में कवि ने पार्वती द्वारा शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिए जो तप किया गया उसका वर्णन किया है।

प्रथम श्लोक के माध्यम से कवि बताते है कि जब पार्वती शिव को कामदेव को अपनी क्रोधाग्नि से भस्म करते हुए देखती है तो उनके मन में उत्पन्न अभिलाषा जो कि सौंदर्य द्वारा शिव प्राप्ति थी वह नष्ट हो गई, अतः पार्वती ने अपने सौंदर्य की निन्दा की क्योंकि पार्वती का सौंदर्य उनके प्रिय शिव को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सका तब पार्वती ने समाधि का सहारा (आश्रय) लिया और तपस्या द्वारा अपने सौंदर्य को सफल बनाने की इच्छा की, क्योंकि वह जानती थी की उस प्रकार का प्रेमी व वैसा (शिव जैसा) पति दोनों बिना तपस्या के प्राप्त नहीं किया जा सकता।

माता मेना के विभिन्न प्रकार से समझाने के बाद भी पार्वती ने अपना निर्णय नहीं बदला और वह अटल रही। इसके बाद पार्वती ने अपनी प्रिय और विश्वसनीय सखी के माध्यम से अपने पिता हिमालय से तपस्या के लिए वन में रहने की आज्ञा मांगी। अपने पिता हिमालय की आज्ञा पाकर पार्वती ने अपनी तपस्या के लिए प्रस्थान किया तथा तपस्या के लिए उचित स्थान चुना। पार्वती ने अपनी तपस्या के लिए एक ऐसे शिखर को चुना जो मोरों से युक्त था, इस स्थान पर हिंसक जंतु नहीं रहते थे इसलिए यह स्थान तपस्या की दृष्टि से उत्तम था अथवा यह स्थल तयस्वी जनों से युक्त था। इसी कारण पार्वती ने अपनी तपस्या के लिए इस शिखर को चुना जो कि बाद में उन्हीं के नाम (गौरी शिखर) के नाम से संसार में प्रसिद्ध हो गया।

उस शिव की समाधि को पार्वती ने अपनी कठोर तपस्या से ऐसा छिन्न–भिन्न कर दिया कि शिव को स्वयं ही उसके पार्वती के समीप आने के लिए विवश होना पड़ा। इस प्रकार से पार्वती को शिव की प्राप्ति होती है। हमें हमेशा अपने लक्ष्य को ऊँचा रखना चाहिए तथा उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपनी पूरी मेहनत और श्रृद्धा के साथ बिना रूके प्रयास करना चाहिए। ऐसा करने से हम अपने लक्ष्य को अवश्य ही प्राप्त कर लेंगें।

इस इकाई में आप पार्वती की कठोर तपस्या के वर्णन का अध्ययन करेंगे जिससे 'शिवप्राप्ति' रूपी फल प्राप्ति संभव है ।

10.2 शिव प्राप्ति हेतु पार्वती तपस्या का वर्णन

विसृष्टरागादधरान्निवर्तितः स्तनाङ्गरागारुणिताच्च कन्दुकात् ।
कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः कृतोऽक्षसूत्रप्रणयी तया करः ।।11।।

अन्वयः –तथा विसृष्टरागात् अधरात् (निवर्तितः) स्तनाङ्गरागारुणितात् कन्दुकात् निर्वातितः, कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः करः अक्षसूत्रप्रणयी कृतः ।।11।।

प्रसंग – यहाँ कुशग्रहण तथा अक्षमालाधारण के विषय का प्रतिपादन किया जा रहा है–

अनुवाद– पार्वती अपने जिस हाथ से होठों में लाक्षा का रंग लगाया करतीं और स्तनों के अंगराग से रँगी हुआ गेंद से खेला करती थीं अब उसी हाथ से उक्त दोनों कार्य छोड़कर रुद्राक्ष की माला जपने लगीं, जिसकी अंगुलियाँ कुश उखाड़ने के कारण कटफट गई थीं ।।11।।

शब्दार्थ –विसृष्टरागात्– लाक्षारस द्वारा जिसका रंगना छोड़ दिया गया है ऐसा– यह अधरात् का विशेषण है। तपस्या का व्रत लेने के पश्चात् पार्वती ने अधरोष्ठ का रंगना छोड़ दिया था। **अधरात्**–नीचे के होठ से, यहाँ अधर शब्द का लक्षण शक्ति द्वारा अधर रंजन अर्थ होता है। यहाँ जुगुप्साविरामप्रमादार्थानमुपसंख्यानम्' वार्तिक से अपादान में पंचमी विभक्ति हुई है। **स्तनागारुणितात** – स्तनों पर लगे हुए अंगराग (उबटन) से लाल। **अंगरागः**– विलेपनम् शरीर में लगने वाला लेप अर्थात् उबटन। **अरुणितात्**– लाल किये हुए अथवा लालिमा से। खेलने के समय उछलती हुई गेंद पार्वती के स्तनों का स्पर्श किया करती थी, अतः स्तनों में लगे हुए अंगराग से गेंद लाल रंग की हो जाया करती थी। **कन्दुकात्** – गेंद से – अधर को रंगने के सदृश पार्वती ने गेंद खेलना त्याग दिया। **निवर्तितः** – निवृत्त हुआ, यह कर का विशेषण है।

कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः – कुश के ऊपरी भागों को काटने से घायल अंगुलियों वाला यह हाथ का विशेषण है। **परिक्षताङ्गुलिः** –घायल अंगुलियों वाला । **अक्षसूत्रप्रणयी** – रुद्राक्षों में बनी हुई माला से प्रेम करने वाला यह भी हाथ का विशेषण है। **प्रणय** – प्रेम प्रणयी प्रेमी अक्षसूत्रम् वस्तुतः पार्वती ने अधर का रंगना तथा गेंद का खेलना इन दो कार्यों को त्यागकर उसके स्थान पर कुशों का लाना तथा रुद्राक्ष माला का जाप करना इन दो कार्यों को स्वीकार कर लिया था।

समासाः– विसृष्टरागात् = विसृष्टः रागः यस्मात् सः विसृष्टरागाः (बहु०) तस्मात् विसृष्टरागात् ।

स्तनाङ्गरा गारुणितात–स्तनस्यः अङ्गरागः (ष०तत्पु०) स्तनाङ्गरागः, स्तनाङ्गरागेण अरुणितः (तृ०तत्पु०) स्तमाङ्गरागारुणितः तस्मात्।

कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः–कुशानाम् अङ्कुराः (प०तत्पु०) कुशाङ्कुराः कुशाङ्कुराणाम् आदानम् (ष०तत्पु०) कुशाङ्कुरादां तेन परिक्षता अङ्गुलयः यस्मिन सः कुशाङ्कुरादान परिक्षताङ्गुलिः (बहु०)

अक्षसूत्रप्रणयी –अक्षणां सूत्रम् अक्षसूत्रम् (ष०तत्पु०) अक्षसूत्रं प्रणयः अस्यास्तीति अक्षसूत्रप्रणयी ।

अलंकारः– इस पद्य में पर्याय' नामक अलङ्कार है।

महार्हशय्या परिवर्तनच्युतैः स्वकेशपुष्पैरपि या स्म दूयते ।
अशेत सा बाहुलतोपधायिनी निषेदुषी स्थण्डिल एव केवले ।।12।।

अन्वय– महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः स्वकेशपुष्पैः अपि या दूयते स्म सा बाहुलतोपधायिनी 'सती' केवले स्थण्डिले एव निषेदुषी सती अशेत।।12।।

प्रसंग – व्रतों में आवश्यक भूमिशयन को बताया जा रहा है–

अनुवाद– बहुमूल्य शैय्या पर करवटें बदलते समय अपने ही बालों से गिरे हुए फूलों से भी जिस पार्वती को कष्ट होता था, वही पार्वती अब केवल भूमि पर (बिना बिछौना बिछाये) अपनी बाहों की तकिया लगाकर बैठे ही बैठे सोने लगीं।।12।।

शब्दार्थ – महार्हशय्या परिवर्तनच्युतैः अत्यधिक मूल्य वाली शय्या पर करवट बदलने से गिरे हुये। **महार्ह**– अत्यधिक मूल्य वाली (महान् अर्हः यस्या सा)। **शय्या**– बिस्तर (शय्यते अत्र इति)। **परिवर्तन** – बदलना। **च्युतैः**– गिरे हुये। **स्वकेशपुष्पैः**– अपने बालों में लगे हुये फूलों से। **दूयतेस्म** – कष्ट प्राप्त करती थी। इसका कर्ता 'या'। **बाहुलतोपधायिनी**– लता के सदृश सुकोमल अपनी भुजाओं का तकिया लगाने वाली। **उपधान** – तकिया। **केवले**– बिछोने से रहित। **स्थण्डिले**– चबूतरा अथवा साफ की गई हुई भूमि स्थण्डिल संस्कृता भूमि' (हलायुध)। **अशेत**– सोती थी या सोया करती थी। इसका कर्ता सा'। **निषेदुषी** – बैठती थी।

समासाः –महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः– महार्हा चासौ शय्या (कर्म०) महार्हशय्या (कर्म०) महार्हशय्यायां परिवर्तनम् (स० तत्पु०) महार्हशय्यापरिवर्तनम् महशिय्या परिवर्तनेन च्युतानि (तृ० तत्पु०) तैः।

स्वकेशपुष्पैः– स्वकेशानां पुष्पैः (ष० तत्पु०) स्वकेशपुष्पाणि, तैः।

बाहुलतोपधायिनी–बाहुरेव लता (कर्म०) बाहुलता, बाहुलताम् उपधत्ते (उपपद तत्पु०) इति सा।

पुनर्ग्रहीतुं नियमस्थया तया द्वयेऽपि निक्षेप इवार्पितं द्वयम् ।
लतासु तन्वीषु विलासचेष्टितं विलोलदृष्टं हरिणाङ्गनासु च।।13।।

अन्वयः– नियमस्थया तया तन्वीषुलतासु विलासचेष्टितं, हरिणाङ्गनासु विलोलदृष्टं च , द्वये अपि द्वयं पुनः ग्रहीतुं निक्षेपः अर्पितम् इव।।13।।

प्रसंग –व्रत हेतु पार्वती ने किस प्रकार अपने स्वभाविक विलास चेष्टा आदि को गिरवी रख दिया, यह बताया गया है।

अनुवाद– व्रत धारण करने वाली पार्वती ने मानो अपनी विलास चेष्टाओं को कोमल लताओं तथा चंचल चितवन को हरिणियों के पास इसलिए धरोहर के रूप में रख दिया कि फिर प्रिय–समागम के समय उन्हें वापस लिया जा सके।।13।।

शब्दार्थ –नियमस्थया– तपस्या सम्बन्धी नियमों का पालन करने वाली, यह तथा का विशेषण है। **विलासचेष्टितम्** – विलास (हावभाव, नाज–नखरे) की चेष्टाओं को 'यानस्थानासनादीनां मुखनेत्रादिकर्मणाम्। विशेषस्तु विलासः स्यादिष्टदर्शनादिनाङ्क साहित्यदर्पणङ्ग **विलोलदृष्टिम्** – चञ्चल दृष्टि को। **द्वयम्**– दोनों। **तन्वीषु** – कृश, पतली (सुकोमल)। यह लतासु का विशेषण है। **हरिणाङ्गनासु** – हरिणियों में। **द्वये**– दो में। **ग्रहीतुम्**– ग्रहण अथवा स्वीकार करने के लिये (पुनः प्राप्त कर लेने के लिये। **निक्षेप**– धरोहर, अमानत, थाती (निक्षिप्यते असौ इति निक्षेपः) **इव** – मानो यह उत्प्रेक्षावाचक अव्यय है। **अर्पितम्**–रखा गया (रख दिया)।

समासाः– नियमस्थया– नियमे तिष्ठतीति (उपपद तत्पु०) नियमस्था

विलासचेष्टितम् – विलास एवं चेष्टितम् विलासचेष्टितम् । हरिणांगनासु –हरिणानाम् अङ्गनाः (प०तत्पु०) हरिणाङ्गनाः तासु विलोलदृष्टम्–विलोलं च तद् दृष्टम् (कर्म०) विलोलदृष्टम्।

अलंकारः– उक्त पद्य में उत्प्रेक्षा' अलङ्कार है। तप करते समय पार्वती का शरीर निश्चल तथा दृष्टि स्थिर थी। अतएव कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो पार्वती ने अपनी विलास की चेष्टा लताओं के पास तथा चंचल दृष्टि हरिणियों के पास धरोहर के रूप में रख दी थीं।

अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान् घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्धयत् ।
गुहोऽपि येषां प्रथमाप्त जन्मनां न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यति।।14।।

अन्वयः– सा स्वयम् एव अतन्द्रिता 'सती' वृक्षकान् घटस्तनप्रस्रवणैः व्यवर्धयत्। गुहः अपि प्रथमाप्तजन्मनां येषां पुत्रवात्सल्यं न अपाकरिष्यति।।14।।

प्रसंग– पार्वती के तत्कालोचित मुनिव्यवहार के विषय में कहते हैं–

अनुवाद– पार्वती ने छोटे–छोटे पौधों को लगाकर अपने स्तनों जैसे घड़ों से पय (जल) पिला–पिला (सींच–सींच) कर बड़ा बनाया इसीलिए इन पहले जन्म लेने वाले पौधों के प्रति पार्वती के वात्सल्य भाव को (बाद में पैदा होने वाले) कुमार स्कन्द भी दूर न कर सके।।14।।

शब्दार्थ –**अतन्द्रिता**– आलस्यविहीन होकर यह 'सा' का विशेषण है। **वृक्षकान्**– छोटे–छोटे पेड़ों को। **घटस्तनप्रस्रवणैः**– घड़े रूपी स्तनों के पानी से। **प्रसवण** –झरना बहना। **स्वयमेव** – अपने आप ही, स्वयं हो। इसका सम्बन्ध **व्यवर्धयत्** क्रिया के साथ है, किन्तु टीकाकार महिनाथ ने अतन्दिता' के साथ सम्बन्ध जोड़ा है। **व्यवर्धयत्** – चढ़ाया, पालन पोषण किया गुह कार्तिकेय शिवजी के दो पुत्र थे। (1) गजानन (2) षडानन । षडानन के दो अन्य नाम कार्तिकेय और गुह भी हैं। यह देवताओं की सेना के सेनापति थे ।

समासाः– अतन्दिता–न तन्द्रिता (नञ् तत्पु0)

घटस्तनप्रस्रवणेः– घटौ एवं स्तनौ (कर्म०) घटस्तनौ,तयोः प्रस्रवाणिः घटस्तनप्रस्रवाणि ,तैः घटस्तनप्रस्रवणेः

प्रथमाप्तजन्मनाम् –प्रथमम् आप्तं(सुप्पा) जन्म यैस्ते तेषाम् (बहु०)

पुत्रवात्सल्यम्–पुत्रस्य वात्सल्यम् इति पुत्रवात्सल्यम् (ष०तत्पु०)।

अलंकारः– इसमे 'विरोध' नामक अलङ्कार है। कुछ विद्वानों ने इसमें उत्प्रेक्षा' अलङ्कार भी माना है।

अरण्यबीजाञ्जलि दानलालिता स्तथा च तस्यां हरिणा विशश्वसुः ।
यथा तदीयैर्नयनैः कुतूहलात् पुरः सखीनाममिमीत लोचने ।। 15 ।।

अन्वयः– अरण्यवीजाञ्जलिदानलालिताः हरिणा च तस्यां तथा विश्वसु यथा कुतूहलात् तदीयैः नयनैः पुरः सखीनां लोचने अमिमीत **।। 15 ।।**

प्रसंग – वनवासिनी पार्वती किस प्रकार हरिणों की भी विश्वासपात्र बन गई थी, यह कहा जा रहा है–

अनुवाद– जंगली धान के बीजों की अंजलियों से पाले पोसे गए हरिण उस पार्वती पर इतना विश्वास करते थे कि कभी–कभी उत्सुकतावश पार्वती उनके नेत्रों से अपनी सखियों के नेत्रों को नापा करती थीं (किन्तु ऐसा करने पर भी वे भागते नहीं थे) **।। 15 ।।**

टिप्पणियाँ– अर**ण्यबीजाञ्जलिदानलालिताः**– जंगल में उत्पन्न नीवारादि अन्नों से भरी मुट्ठियों के देने से पालित। **अरण्यबीज**–वन में अपने आप उगने वाले नीवार आदि अन्न के दाने। **विश्वसु** – विश्वास करते थे। **कुतूहलात्** – उत्सुकतावश 'रम्यावस्तु समालोके लोलता स्यात् कुतूहलम्'। **तदीयै;**– उनसे (मृगों से) सम्बन्धित अथवा मृगों से यहाँ 'सह' शब्द के योग के कारण तृतीया विभक्ति हुई है। **नयनैः**– आँखों से। **लोचने**– आँखों को। **पुरः**– सामने, समक्ष यह अव्यय है तथा इसका सम्बन्ध' अमिमीत क्रिया से है। **अमिमीत**– नापती थी।

समासाः– अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिताः अरण्यस्य बीजानि (ष०तत्पु०) अरण्यबीजानि, अरण्यबीजानाम् अञ्जलयः (ष०तत्पु०) अरण्यबीजाञ्जलयः, तेषाम दानम् (ष०तत्पु) अरण्यबीजाञ्जलिदानम्, अरण्यबीजाञ्जलिदानेन लालिताः (तृ० तत्पु०) अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिताः।

कृताभिषेकां हुतजातवेदसं त्वगुत्तरासङ्गवतीमधीतिनीम् ।
दिदृक्षवस्तामृषयोऽभ्युपागमन् न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते।।16।।

अन्वयः – कृताभिषेकां हुतजातवेदसं त्वगुत्तरासङ्गवतीम् अधीतिनी तां दिदृक्षवः ऋषयः अभ्युपागमन्। धर्मवृद्धेषु वयः न समीक्ष्यते।।16।।

प्रसंग –पार्वती के तपस्यारूप अनुष्ठान के प्रभाव का अतिशय कहा जा रहा है।

अनुवाद– स्नान करने के पश्चात् पार्वती अग्नि में हवन करती और नूतन वल्कल का वस्त्र धारण करके स्तुतियों आदि का अध्ययन करने बैठ जाती थीं । उन्हें उस रूप में देखने के लिए ऋषिगण भी आते थे, क्योकि धर्म–परायण तपस्वियों की आयु नहीं देखी जाती है।।16।।

शब्दार्थ –कृताभिषेकाम्– कर लिया है स्नान जिसने उसको यहाँ स्नान से तात्पर्य त्रिकाल स्नान से है। यह प्रातः, मध्याह और सायंकाल तीन बार किया जाता है। **हुतजातवेदसम्**– जिसने अग्नि में हवन कर लिया है। **जातवेद** – अग्नि, 'कृ पीटयोनिर्ज्वलनो जातवेदास्तनूनपात' इत्यमरः। **त्वगुत्तरासङ्गवतीम्**– जिसने वल्कल (पेड़ों की छाल द्वारा निर्मित) का उत्तरीय धारण कर लिया है, उसकों। **अधीतिनीम्**– वेद पाठ करने वाली। **दिदृक्षवः**– देखने के इच्छुक (अभिलाषी)। **ऋषयः** – का विशेषण है। यहाँ 'न लोकाव्ययनिष्ठा खलर्धतृणाम्' से षष्ठी का निषेध हो गया है। अतः यहाँ पर 'तस्याः दिदृक्षवः' न होकर 'तां दिदृक्षवः' ही हुआ है। **अभ्युपागमन्**– आये, पास आते थे। **धर्मवृद्धेषु** – धर्म में श्रेष्ठ लोगों में अथवा अधिक धार्मिक व्यक्तियों के बारे में। **वयः** – अवस्था आयु। यह 'वयम्' शब्द का रूप है। **न समीक्ष्यते**– नहीं देखी जाती है। अवस्था में कहीं अधिक ऋषि लोग अल्पवयस्का उस पार्वती के दर्शनों के निमित्त आया करते थे। इसमें कोई अधर्म की बात नहीं है क्योंकि पार्वती गुणों तथा धर्म की दृष्टि से उन ऋषियों की अपेक्षा कहीं अधिक आगे थी और उसका तत्कालीन चरित्र अनुकरणीय बन चुका था। जो लोग धर्म में वृद्धता को प्राप्त कर लिया करते हैं, उनकी उम्र नहीं देखी जाती। महाकवि **भवभूति** द्वारा रचित उत्तररामचरित में भी इसी भाव को व्यक्त किया गया हैः "गुणाः पूजास्थान गुणिषु न च लिंगं न च वयः।

समासाः– कृताभिषेकाम् –कृतः अभिषेकः यया (बहु०) सा कृताभिषेका, ताम्।

हुतजातवेदसम्–हुतः जातवेदाः यया सा हुजातवेदाः (बहु०) ताम् हुतजातवेदसम्

त्वगुत्तरासङ्गवतीम् –उत्तरे आसन्यते (उपपद तत्पु०) इति उत्तरासङ्गः सोऽस्या अस्तीति सा, त्वचा उत्तरासङ्गवती (तृ० तत्पु०) त्वगुत्तरसङ्गवती ताम्।

धर्मवृद्धेषु– धर्मेण वृद्धाः (तृ० तत्पु०) धर्मवृद्धाः तेषु।

विरोधिसत्त्वोज्झित पूर्वमत्सरं द्रुमैरभीष्टप्रसवार्चितातिथिः ।
नवोटजाभ्यन्तरसम्भृतानलं तपोवनं तच्च बभूव पावनम्।।17।।

अन्वयः –विरोधिसत्त्वोज्झितपूर्वमत्सरं द्रुमैः अभीष्टप्रसवार्चितातिथिः नवोटजाभ्यन्तरसम्भृतानलं तच्च तपोवनं पावनं बभूव।।17।।

प्रसंग – पार्वती को निवासस्थली बन चुकी उस वनस्थली के प्रभाव का अतिशय बताया जा रहा है।

अनुवाद– पार्वती का वह तपोवन इतना पवित्र बन गया था कि उसमें निवास करने वाले परस्पर विरोधी जीवों का शत्रुभाव मिट गया था। वहाँ के वृक्ष भी अतिथियों के

आने पर उनकी इच्छा के अनुसार फल देकर स्वागत करते थे। उसमें एक नवीन पर्णशाला के भीतर यज्ञ कुण्ड में अग्नि जलती रहती थी।।17।।

शब्दार्थ –**विरोधिसत्वोज्झितपूर्वमत्सरम्** – विरोध–वैर, **विरोधी**– परस्पर विरोध रखने वाले, **सत्व**–प्राणी, **उज्झित**– त्याग दिया गया, **मत्सर**– शत्रुता, डाह, ईर्ष्या मत्सरोऽन्यशुभद्वेषे इत्यादि' इत्यमरः पूर्व–पहले की, जन्मजात यहाँ पर परस्पर वैर रखने वाले प्राणियों द्वारा अपनी जन्मजात (स्वाभाविक) शत्रुता का त्याग कर दिया गया है। तपोवन में ऋषियों के तपःप्रभाव से परस्पर विरोधी प्राणी अपने स्वभाविक वैर का त्याग कर दिया करते हैं। **दुमैः**– वृक्षों के द्वारा। **अभीष्टप्रसवार्चितातिथि**– जिस तपोवन में अभीष्ट फलों द्वारा अतिथियों का सत्कार किया जाता है। **अभीष्ट**– अभिलषित, इच्छित। **अर्चित**– सत्कार किये गये हुए, पूजित। **नवोटजाभ्यन्तरसंभृतानलम्**– नव–नवीन। **उटज** –पत्तों से निर्मित कुटी, पर्णकुटी 'पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। **अभ्यन्तर**– अन्दर। **सम्भृत** –सञ्चित। **अनल**– अग्नि। उपर्युक्त तीनों शब्द 'वनम्' के विशेषण हैं। **तपोवनम्**–तपस्या करने का स्थल (वन)। **पावनम्**– पवित्र बभूव हो गया।

समासाः – विरोधिसत्वोज्झितपूर्वमत्सरम्– विरोधिनश्च ते सत्वाः (कर्म०) विरोधिसत्वाः, तैः उज्झितः पूर्वः मत्सरः यस्मिन् (बहु०) तत् विरोधिसत्वोज्झितपूर्वमत्सरम् । अभीष्टप्रसवार्चितातिथि–अभीष्टः प्रसवैः अर्चिताः अतिथयः यस्मिन् तत् अभीष्टप्रसवार्चितातिथि

तपोवनम्–तपसः वनम् इति तपोवनम् (ष० तत्पु०)

यदा फलं पूर्वतपः समाधिना न तावता लभ्यममंस्त कांङ्क्षितम् ।
तदाऽनपेक्ष्य स्वशरीरमार्दवं तपो महत्सा चरितुं प्रचक्रमे।।18।।

अन्वयः– सा यदा तावता पूर्वतपःसमाधिना काङ्क्षितं फलं लभ्यं न अमंस्त, तदा स्वशरीरमार्दवम् अनपेक्ष्य महत् तपः चरितुं प्रचक्रमे।।18।।

प्रसंग – यहाँ से पार्वती की तपस्या की पराकाष्ठा का वर्णन प्रारम्भ किया जा रहा है–

अनुवाद– जब पार्वती ने देखा कि इस प्रारम्भ किए गए तप से इच्छित फल की प्राप्ति होना सम्भव नहीं है, तब उन्होंने अपने शरीर की कोमलता का ध्यान किए बिना ही कठोर तप करना आरम्भ कर दिया।।18।।

शब्दार्थ –**तावता**– उतने से। यह पूर्वतपः समाधिना का विशेषण है। **पूर्वतपः समाधिना**– पहले की गई हुई तपस्या के द्वारा। **काङ्क्षितम्** –मन चाहा इच्छित अभिलाषित। पार्वती का अभीष्ट था– शिव सदृश पति तथा उनका अनन्य स्नेह प्राप्त कर लेना। **लभ्यम्** – प्राप्त करने योग्य। **न अमंस्त**– नहीं समझा नहीं माना। **तदा**– तब। **स्वशरीरमार्दवम्**– अपने शरीर की कुमारता को। **अनपेक्ष्य**– ध्यान न देकर, उपेक्षा करके। **महत्** – दुस्तर, कठिन। **चरितुम्**– करने के लिये, प्रचक्रमे–प्रारम्भ कर दिया।

समासाः– पूर्वतपःसमाधिना– तपसः समाधिः तपः समाधिः (ष०तत्पु०) पूर्ववासी तपस्समाधिः (कर्म) पूर्वतपः समाधिः तेन स्वशरीरमार्दवम् स्वस्य शरीरम् (ष०तत्पु०) स्वशरीरम् स्वशरीरस्य मार्दवम् (ष०तत्पु०)।

अनपेक्ष्य–न अपेक्ष्य (नञ्तत्पु०)।

क्लमं पयो कन्दुकलीलयापि या तया मुनीनां चरितं व्यगाह्यत।
ध्रुवं वपुः काञ्चनपद्मनिर्मितं मृदु प्रकृत्या च ससारमेव च।।19।।

अन्वयः – या कन्दुकलीलया अपि क्लमं ययौ, तया मुनीनां चरित व्यगाह्यत ध्रुवम् अस्याः वपुः काञ्चन पद्म निर्मितम्, अत एव प्रकृत्या मृदु च ससारम् एव च।।19।।

प्रसंग – कोमल अंगों वाली पार्वती ने स्वयं को अब घोरतप सागर में झोंक दिया। अतः उसके स्वभाव में कोमलता व कठोरतारूप दो विरोधी गुणों की स्थिति बताई जा रही है–

अनुवाद– जिस पार्वती का शरीर पहिले गेंद खेलने से भी थक जाया करता था, वही पार्वती (अत्यन्त कठोर शरीर वाले) मुनियों के समान कठोर तप करने लगीं। इससे यह प्रतीत होता है कि उनका शरीर निश्चित रूप से स्वर्ण कमल से बना हुआ था, इसीलिए उसमें कमल जैसी स्वाभाविक कोमलता और स्वर्ण जैसी स्वाभाविक कठोरता दोनों थी।।19।।

शब्दार्थ –**कन्दुकलीलया**– गेंद खेलने से। **कन्दुक**– गेंद; **लीला**– खेल। **क्लमम्** – थकावट को ययौ किया का यह कर्म है। तथा उस (पार्वती) के द्वारा 'व्यगाह्यत' क्रिया का अनुक्त कर्ता है। **चरितम्**– आचरण, चरित्र। – यह 'व्यगाह्यत' क्रिया का उक्त कर्म है। **व्यगाह्यत** – आचरित किया गया। **ध्रुवम्** – निश्चय ही यह अव्यय है तथा उत्प्रेक्षा को सूचित करता है। **वपुः**–(पार्वती का) शरीर। **काञ्चनपद्मनिर्मितम्** – सोने तथा कमल का बना हुआ अथवा स्वर्ण कमल का बना हुआ। यहाँ प्रथम अर्थ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है तथा उसकी संगति भी इस पद्म के चतुर्थ चरण के साथ ठीक बैठती है अर्थात् वह पार्वती प्रकृति (स्वभाव) से कमल सदृश कोमल तथा स्वर्ण के समान कठोर भी थी। **प्रकृत्या** –प्रकृति अर्थात् स्वभाव से। **मृदु**– कोमल। **संसारम्** – कठोर कठिन।

समासाः – कन्दुकलीलया– कन्दुकस्य लीला कन्दुकलीला (ष० तत्पु०) तया कन्दुकलीलया ।

काञ्चनपदमनिर्मितम् –काञ्चनस्य विकारः काञ्चनं, काञ्चनं च तत्पदम (कर्म०) काञ्चनपदम्, तेन निर्मितम्

काञ्चन पदमनिर्मितम् निर्मितम् (तृ० तत्पु०) ।

ससारम् –सारेण सहितं ससारम्

अलंकारः –उत्प्रेक्षा 'ध्रुवम्' उत्प्रेक्षावाचक शब्द है। पार्वती का शरीर सुवर्ण के समान कठोर और कमल के समान सुकोमल था। सुवर्णसदृश कठोरता से तपश्चर्या की क्षमता सम्भावित होती है।

शुचौ चतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजां शुचिस्मिता मध्यगता सुमध्यमा ।
विजित्य नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभाम् अनन्यदृष्टिः सवितारमैक्षत ।। 20 ।।

अन्वयः– शुचौ शुचि स्मिता सुमध्यमा ज्वलतां चतुर्णां हविर्भुजां मध्यगता 'सती' नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभां विजित्य अनन्यदृष्टिः सती सवितारम् ऐक्षत।

प्रसंग – ग्रीष्म ऋतु में पार्वती की तपस्या का प्रकार क्या था, यह बताते हैं।

अनुवाद– अत्यन्त निर्मल हास्य करने वाली तथा क्षीण कटि वाली पार्वती ग्रीष्म काल में चारों ओर जलती हुई अग्नि के बीच बैठकर आँखों में चकाचौंध पैदा करनेवाली सूर्य की किरणों पर विजय प्रात करके निर्निमेष नेत्रों से सूर्य की ओर देखती रहती थीं।

शब्दार्थ –**शुचौ**– ग्रीष्म ऋतु में। यह शुचि शब्द के सप्तमी विभक्ति के एकवचन का रूप है। **ज्वलताम्** – जलते हुए। यह 'हविर्भुजाम्' का विशेषण है। **चतुर्णाम्** – चारो (अग्नियों) के। **पञ्चाग्नि** – में चारों ओर आग जलाकर साधक को बीच में बैठना पड़ता है। पाँचवी अग्नि सूर्य होता है। **हविर्भुजाम्** – अग्नियों के हवन करते समय अग्नि में हविः (भूत) डाला जाया करता है, अग्नि उसे खाती है अतः अग्नि का ही नाम हविर्भुज' भी अथवा हुतभुज है। मध्यगता बीच में स्थित मध्य शब्द 'हविर्भुज' से सापेक्ष है, अतः गता के साथ इसका समास नहीं होना चाहिये था। किन्तु 'सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः इस नियम के आधार पर समास किया गया है। **मध्यगता**– मध्यमता (द्वितीया तत्पुरुष)। **शुचिस्मिता**– स्वच्छ मुस्कराहट वाली। **शुचि** – पवित्र शुद्ध शोभन। **स्मित** – मुस्कराहट पार्वती को कठोर तप का कोई कष्ट नहीं था, अतएव निरन्तर प्रसन्नचित्त ही रहा करती थी।

समासाः – शुचिस्मिता – शुचि स्मितं यस्याः सा० (बहु०)

सुमध्यमा–शोभनं मध्यम यस्याः (बहु०) सा।

मध्यगता –मध्यं गता (द्वि० तत्पु०)।

नेत्रप्रतिघातिनीम् –नेत्रे प्रतिहन्ति तच्छीला नेत्रप्रतिघातिनी , ताम् नेत्र प्रतिघातिनीम्

अनन्यदृष्टिः – न विद्यते अन्यत्र दृष्टिः यंस्याः सा अनन्यदृष्टिः ।

बोध /अभ्यास प्रश्न

बोध प्रश्न

क) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए–

1. कुमारसंभवम् .....की कृति है।
2. कुमारसंभवम् एक..... है।
3. कुमारसंभवम् में .....की तपस्या का वर्णन है।
4. पार्वती .....की पुत्री थी ।

अभ्यास प्रश्न

कुमारसंभव के पाँचवें सर्ग के आधार पर पार्वती की विशेषताओं का वर्णन कीजिए ।

10.3 सारांश

- प्रस्तुत इकाई मे आपने जाना कि सुकोमल पार्वती किस प्रकार कठिन तपस्या कर रही थी ।
- आपने जाना कि पार्वती ने अपने सुकोमल शरीर की ओर ध्यान न देकर केवल लक्ष्य प्राप्ति की ओर ही ध्यान दिया ।

- लक्ष्य निश्चित होने पर लक्ष्य प्राप्ति की ओर अनवरत प्रयास अवश्य ही सफलता दिलाते हैं ,हमें धैर्यपूर्वक प्रयत्न करते रहना चाहिए ,जब तक फल प्राप्ति न हो।

10.4 शब्दावली

निर्मल– स्वच्छ ,पवित्र

ध्रुवम्' –निश्चित ही

पराकाष्ठा –चरम सीमा, उच्चता

वैर – दुश्मनी, शत्रुता

10.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. कुमारसम्भवम् (पंचम सर्ग),व्याख्याकार डा. विश्वनाथ शर्मा
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डा मधु सत्यदेव
3. संस्कृत कवि दर्शन – भोला शंकर व्यास
4. कुमारसम्भवम् (1–5 सर्ग),व्याख्याकार डा. श्रीकृष्ण त्रिपाठी,चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान,दिल्ली

बोध /अभ्यास प्रश्नोंके उत्तर

क) बोध प्रश्नोंके उत्तर

1. कालिदास
2. महाकाव्य
3. पार्वती
4. हिमालय

अभ्यास प्रश्न के उत्तर

अभ्यास प्रश्न के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखे –